जैसलमेर के जैन मंदिर एवं उनकी कलात्मक समृद्धि

विजयशंकर श्रीवास्तव

मरुस्थल की गोद में बसा एवं राजस्थान के उत्तरी-पश्चिमी सम्भाग में प्रहरी रूप में अवस्थित जैसलमेर प्राचीन समय से ही जैन धर्म एवं संस्कृति का केन्द्र रहा है। यहां के विशाल जैन ग्रंथ-भण्डार, कलात्मक जैन मंदिर एवं उनमें उत्कीर्ण एवं सुरक्षित असंख्य प्रस्तर एवं धातु मूर्तियां हमारे देश की कलात्मक निधियां हैं। विभिन्न जैन आचार्यों, श्रावक-श्राविकाओं एवं श्रेष्ठि-वर्ग ने जैसलमेर को जैन संस्कृति के प्रमुख गढ़ के रूप में प्रतिष्ठित कराने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। यद्यपि जैसलमेर के भाटी राजवंश की आस्था हिन्दू धर्म में थी, परन्तु उन्होंने जैन धर्म, कला एवं संस्कृति के विकास तथा प्रसार में सदा धार्मिक सहिष्णुता एवं सहृदयता का परिचय दिया।

१२ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जैसलमेर नगर की स्थापना के पूर्व शहर से लगभग १६ किलोमीटर दूरस्थ लोद्रवा या लोद्रपुर इस राज्य की राजधानी थी। यहां का भगवान पार्श्वनाथ का मंदिर-जैसलमेर परिसर का प्राचीनतम जैन मंदिर है। यह अपनी प्राचीनता एवं कलात्मक समृद्धि के लिए प्रसिद्ध है। मूलतः इस मंदिर का निर्माण ११ वीं शताब्दी में हुआ प्रतीत होता है। गर्भगृह का द्वारखंड, सभा मण्डप के स्तम्भ एवं वाह्य तोरण-द्वार तथा अन्य कुछ संभाग अद्यावधि अधिकांश रूप में अपने मूलस्वरूप में विद्यमान हैं। परम्परानुसार इस मंदिर का निर्माण वि. सं. १०९१ में सागर के पुत्र श्रीधर व राजधर ने करवाया और उसकी प्रतिष्ठा खरतरगच्छ के आचार्य श्री जिनेश्वरसूरि द्वारा सम्पन्न हुई। मोहम्मद गोरी जैसे आक्रांताओं का कोपभाजन लोद्रवा को होना पड़ा जिसके परिणाम-स्वरूप इस मंदिर को पर्याप्त क्षति पहुंची। कालान्तर में १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भणशाली गोत्रीय खीमसिंह और उनके पुत्र पूनसिंह ने मंदिर के जीर्णोद्धार का प्रयत्न किया परन्तु आशातीत सफलता न मिली, अतः पूनसिंह के पुत्र सेठ थाहरूशाह ने इस मंदिर की प्राचीन नींवों पर विशालस्तर पर निर्माण कार्य करा वर्तमान मंदिर निर्मित किया। कसौटी पत्थर की श्यामवर्णी सहस्रफणी श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ की प्रतिमा मूलनायक के रूप में प्रतिष्ठित हुई जिसका परिसर श्वेत संगमरमर विनिर्मित है। उसकी चरण-चौकी पर उत्कीर्ण लेख से विदित होता है कि थाहरूशाह ने अपनी पत्नी व पुत्रों सहित इस मूर्ति का निर्माण करा आचार्य श्री जिनराज-सूरि द्वारा उसकी प्रतिष्ठा वि. सं. १६७५ मार्गशीर्ष सुदी १२ गुरुवार को करवाया। ये आचार्य श्री खरतरगच्छ के प्रमुख आचार्य थे।

इस मन्दिर के बाह्य एवं आभ्यन्तर संभागों पर उकेरी हुई मूर्तियां प्राचीनता की द्योतक हैं तथा शिल्पकारों के कुशल तक्षण-कला की परिचायक हैं। मन्दिर का अलंकृत तोरण-द्वार विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके दोनों स्तंभ लगभग हजार वर्ष पुराने हैं जैसा कि उन पर उकेरी गई मूर्तियों से सुस्पष्ट है। पुराने स्तम्भों पर १७ वीं शताब्दी में थाहरूशाह ने कलात्मक तोरण बनवाया जिसके मध्यवर्ती भाग में आसनस्थ तीर्थंकर विराजमान हैं। मंदिर के प्रांगण के चारों कोनों में अपनी पत्नी, पुत्रों व पौत्रों के पुण्यार्थ वि.सं. १६९३ में थाहरूशाह ने लघु जिनालय बनवाए जिनमें आदिनाथ, अजितनाथ, संभवनाथ एवं चिन्तामणि पार्श्वनाथ की प्रतिमाएं आचार्य जिनराजसूरि द्वारा वि. सं. १६७५ में प्रधान मंदिर की प्रतिष्ठा के साथ ही पधराई गयीं। निकट में ही अष्टापदजी के भाव की विशालकाय एवं धातु-विनिर्मित कलात्मक कल्पवृक्ष बना हुआ है। मूल मंदिर के सभामंडप में सहजकीर्तिगणि नामक जैन विद्वान विरचित शतदल पद्म यंत्र की प्रशस्ति का अभिलेख लगा हुआ है जो मंदिर की प्रतिष्ठा के समय वि. सं. १६७५ में रचा गया था। अलंकार शास्त्र की इस अपूर्व प्रशस्ति में थाहरूशाह और उनके पूर्वजों का गुणगान किया गया है। लोद्रवा के जैन मंदिर में प्रस्तर व धातु की अनेक मूर्तियां विद्यमान हैं। मकराने की गणपति मूर्ति के लेख से ज्ञात होता है कि वि. सं. १३३७ में समस्त गोष्ठिका के आदेश पर पं. पद्मचन्द्र ने अजमेर दुर्ग में जाकर सच्चिका व गणपति सहित जिन-बिम्ब निर्मित कराया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुस्लिम आक्रांताओं के अनवरत आक्रमण के कारण लोद्रवा को असुरक्षित समझकर, भाटी जैसल द्वारा जैसलमेर नगर की स्थापना वि. सं. १२३४ के लगभग हुई। नगर व दुर्ग का निर्माण कार्य उनके पुत्र शालिवाहन के समय भी चलता रहा। प्रारम्भ से ही जैसलमेर का जैन-धर्म से प्रगाढ़ सम्बन्ध स्थापित हो गया। 'खरतरगच्छ वृहद् गुर्वावली' में वि. सं. १२४४ के वर्णन में अन्य नगरों के साथ जैसलमेर का भी उल्लेख है। जैसलमेर भंडार में सुरक्षित पूर्णभद्र द्वारा वि. सं. १२८५ में रचित 'धन्यशाली भद्र चरित' (हस्त-लिखित ग्रंथ सं. २७०) में भी जैसलमेर दुर्ग का जैन धर्म से सम्बन्ध सिद्ध है। जब वि. सं. १३४० में आचार्य जिन प्रबोध सूरि का आगमन जैसलमेर हुआ, तो तत्कालीन भाटी-नरेश कर्णदेव अपने उच्चाधिकारियों, सेना व परिवार सहित उनके स्वागत को गये और राज्य में चातुर्मास व्यतीत करने का आग्रह किया। आचार्य श्री ने लोगों को दीक्षा दी। इसी प्रकार वि. सं. १३५६ में राजाधिराज जैत्रसिंह ने आचार्य जिनचन्द्रसूरि के आगमन पर स्वयं जाकर उनका स्वागत किया और अगले वर्ष बड़े उत्साह के साथ मालारोपण उत्सव सम्पन्न हुआ। वि. सं. १३५८ में तोला ने अनेक जिन-प्रतिमाओं को प्रतिष्ठापित कराया। जैसलमेर खरतरगच्छ का प्रधान केन्द्र बन गया।

जैसलमेर दुर्ग के जैन मंदिर धार्मिक प्रवणता एवं कलात्मकता की निधि है। वि. सं. १२७५ में लिखित 'दश श्रावक चरित' की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि जैसलमेर दुर्ग में पार्श्वनाथ मंदिर का निर्माण क्षेमेन्द्र के पुत्र जगधर द्वारा कराया गया। दुर्ग में आठ जैन मंदिर हैं जो १५ वीं, १६ वीं शताब्दी की अनुपम कलाकृतियां हैं। १५-१६ वीं शताब्दी में मंदिर निर्माण का जो पुनर्जागरण राजस्थान व गुजरात परिसर में हुआ उसमें जैसलमेर के इन मंदिरों का विशिष्ट योगदान है। नागर शैली में विनिर्मित शिखरबद्ध ये मंदिर अपनी कलात्मक समृद्धि एवं मूर्तियों की भावभंगिमा की दृष्टि से मनमोहक हैं। मरुस्थली की गोद में एक ही शताब्दी में एक के बाद एक क्रमशः बने ये मंदिर-जैसलमेर की समृद्ध कलात्मक एवं स्थापत्य परम्परा के निदर्शक हैं।

इनमें ५२ जिनालयों से युक्त चिन्तामणि पार्श्वनाथ का पीतवर्णी पाषाण विनिर्मित मंदिर प्राचीनतम एवं प्रमुख है। ऐसा भास होता है कि अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के समय इस प्राचीन मंदिर को पर्याप्त क्षति हुई अतः १५ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में पुरानी नींव पर वर्तमान मंदिर का निर्माण हुआ। इस मंदिर की नींव खरतरगच्छ के आचार्य जिनराजसूरि के उपदेश से श्री सागरचन्द्र सूरि ने वि. सं. १४५९ में डाली थी और चौदह वर्षों तक मंदिर का निर्माण कार्य निरन्तर चलता रहा। फलतः वि. सं. १४७३ में जिनवर्द्धन सूरि द्वारा मंदिर की प्रतिष्ठा की गयी। इस भव्य मंदिर के निर्माण का श्रेय ओसवाल वंशीय रांका गोत्र के श्रेष्ठि जयसिंह तथा नरसिंह को है। मंदिर में लगी दो प्रशस्तियां हैं जिनमें इस मंदिर को 'खरतरप्रासाद चूड़ामणि' व 'लक्ष्मणविहार' की संज्ञा दी गई है। इसे 'वास्तु विद्या के अनुसार' निर्मित कहा गया है। तत्कालीन भाटी-नरेश लक्ष्मणसिंह के नाम पर मंदिर का नामकरण 'लक्ष्मण विहार' कर-जैसलमेर के जैन-समुदाय ने अपनी निष्ठा एवं श्रद्धा अभिव्यक्त की है। मूलनायक के रूप में भगवान पार्श्वनाथ की भव्य प्रतिमा प्रतिष्ठित है जो लोद्रवा से लाई गई है। संरचना की दृष्टि से मंदिर में सुन्दर तोरण, अलंकृत मुख चतुष्की, रंगमंडप, त्रिक्, गूढ़मण्डप, मूलप्रासाद तथा ५२ जिनालय हैं। स्तंभ व वितान की कारीगरी उल्लेखनीय है। गर्भगृह के बाहर एक ओर जैसलमेर के पीले पत्थर से बनी सागरचन्द्राचार्य की हाथ जोड़े मूर्ति जड़ी हुई है जिनकी प्रेरणा से इस मंदिर का समारम्भ हुआ था। वि. सं. १५१८ में बनी शत्रुंजय, गिरनार एवं नंदीश्वर पट्टिका महत्वपूर्ण है। मंदिर का तोरणद्वार सुन्दर कलाकृति है।

संभवनाथ मंदिर अपने विशाल जैन ग्रंथ-भण्डार के लिए संसार प्रसिद्ध है। जिन भद्रसूरिजी के उपदेश से चोपड़ा गोत्रीय सा. हेमराज पूना आदि ने मंदिर वि. सं. १४९४ में प्रारम्भ कराया जिसे कुशल कारीगरों ने तीन वर्षों में सम्पूर्ण किया। वि. सं. १४९७ में आचार्य जिनभद्रसूरि द्वारा इस मंदिर की प्रतिष्ठा बड़े समारोहपूर्वक की गयी, जिसमें महारावल वैरिशाल स्वयं उपस्थित रहे। आचार्य श्री ने इस अवसर पर ३०० मूर्तियों की प्रतिष्ठा की। इस मंदिर में पीले पाषाण पर खुदी हुई तपपट्टिका (२ फीट १० इंच × १ फुट १० इंच) सुरक्षित है जिसे वि. सं. १५०५ में शंखवाल गोत्रीय श्रेष्ठि षेता ने बनवाया। इसमें बाएं तरफ २४ तीर्थंकरों के चार कल्याणक तिथियां (च्यवन, जन्म, दीक्षा एवं ज्ञान) तथा दाएं ओर तप के कोठे बने हैं। नीचे के भाग में उद्योतनसूरि से जिनभद्रसूरि तक खरतरगच्छ के आचार्यों की नामावली अंकित है। आबू पर्वत में भी ऐसी तपपट्टिका विद्यमान हैं। मंदिर के रंगमंडप की छत (वितान) और उसमें उकेरी मूर्तियां (Bracket–Figures) भव्य एवं मनमोहक हैं। मंदिर के प्रवेश की दोनों ओर कृत्रिम गवाक्षों (False Window–Screens) को जैन अष्ट मांगलिक चिन्हों से समलंकृत कर कलाकार ने अपने सौन्दर्य-बोध को मूर्त रूप प्रदान किया है। इस मंदिर की एक सपरिकर मूर्ति (नाहटा-बीकानेर जैन लेख संग्रह, अभिलेख संख्या २७०१, पृ. ३८४) का निर्माता कलाकार सूत्रधार सांगण था जिसने वि. सं. १५१८ में उसे निर्मित किया।

शीतलनाथजी के मंदिर का निर्माण डागा गोत्रीय लूणसा-भणसा ने वि. सं. १५०९ में कराया था। इस मंदिर के श्वेत संगमरमर के जिनेन्द्र-पट्टक पर चतुर्विंशति तीर्थंकरों का अंकन है तथा एक अन्य पट्टिका पर शत्रुंजय-गिरनार के तीर्थों का भव्य लक्षण विद्यमान है। चंद्रप्रभस्वामी का मंदिर तिमंजला है जिसके प्रत्येक तले में चौमुखी प्रतिमा प्रतिष्ठित है। गर्भगृह की प्रधान मूलनायक प्रतिमा आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ की है जिसकी चरण-चौकी पर उत्कीर्ण लेख के अनुसार जिनभद्रसूरि ने वि. सं. १५०९ में उसकी प्रतिष्ठा की थी। इसे भणसाली गोत्रीय सा. वीदा ने बनवाया था। स्थापत्य की दृष्टि से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्रप्रभस्वामी का यह मंदिर महत्वपूर्ण है—उसमें प्रभूत अलंकरण व कारीगरी विद्यमान है। उसकी छत (वितान) भी समलंकृत है। संरचना की दृष्टि से यह मंदिर सुप्रसिद्ध राणकपुर के चौमुखा मंदिर का लघु-प्रतिकृति प्रतीत होता है। गर्भगृह के द्वारखण्ड पर देवी प्रतिमाएं बनी हैं जिनके निर्माता कलाकार सूत्रधार **लषाधीरा** तथा **परबत सूरा** थे। अर्द्धमंडप की स्थानक शिव तथा नर्तन करती रमणी का निर्माता सूरा तथा स्थानक चतुर्बाहु कुबेर प्रतिमा का कलाकार धीरा थे। ये निश्चयतः जैसलमेर के प्रमुख शिल्पी रहे होंगे। ऋषभदेव के मंदिर का निर्माण गणधर चोपड़ा गोत्रीय सा. सच्चा के पुत्र धन्ना ने महारावल देवीदास के राजत्व में वि. सं. १५३६ में कराया। इस मंदिर के बाह्य वेदीबंध पर आसनस्थ पार्वती की मूर्ति बनी है जिसे सूत्रधार लक्ष्मण ने बनाया था। इस मंदिर में धातु-प्रतिमाओं का भी विशाल संग्रह है जो ११ वीं से १६ वीं शताब्दी की हैं। इस मंदिर के चौभूमिये के तोरण पर वि. सं. १५३६ का लेख है जिसका सूत्रधार देवदास (नाहटा-बीकानेर लेख संग्रह, लेखांक २७३८, पृ. ३८८) था। महावीर स्वामी का मंदिर ओसवाल-वंश के वरडिया गोत्रीय सा. दीपा द्वारा वि. सं. १४७३ में निर्मित कराया गया। यह मंदिर साधारण एवं सादगी लिए हुए है।

जैसलमेर दुर्ग में एक ही प्रांगण में विनिर्मित शांतिनाथ एवं अष्टापदजी के मन्दिर उत्कृष्ट कला के उदाहरण हैं। ये द्विभूमिक प्रासाद हैं। ऊपर के भाग में शान्तिनाथ एवं नीचे के अष्टापद मन्दिर में १७ वें तीर्थंकर कुंथुनाथ प्रतिष्ठित हैं। इन दोनों मंदिरों की एक ही प्रशस्ति है जो राजस्थानी में है। इससे ज्ञात होता है कि जैसलमेर के दो श्रेष्ठि संखवालेचा गोत्रीय षेता तथा चोपड़ा गोत्रीय पांचा-जिनके मध्य वैवाहिक सम्बन्ध था—ने मिलकर इन मंदिरों का निर्माण करा वि. सं. १५३६ में उसकी प्रतिष्ठा खरतरगच्छ आचार्य जिनसमुद्र सूरि द्वारा करवाई। संघवी षेता ने सकुटुम्ब शत्रुंजय, गिरनार, आबू आदि तीर्थों की कई बार यात्रा की थी, और संभवनाथ मंदिर की सुप्रसिद्ध तपपट्टिका की प्रतिष्ठा कराई थी। उनके पुत्र संघवी वीदा ने मन्दिर में प्रशस्ति लगवाई तथा वि. सं. १५८० में अपने माता-पिता सरसती तथा सं. षेता की धातु-मूर्तियां पाषाण के हाथी पर मंदिर के प्रांगण में प्रतिष्ठित कराई जो आज भी विद्यमान है। प्रशस्ति में इस मन्दिर को **'उत्तंग तारण जैन प्रासाद'** तथा **'विभूमिक अष्टापद महातीर्थ प्रासाद'** कहा गया है। लेख में विष्णु के दशावतार सहित लक्ष्मीनारायण की मूर्ति निर्मित होने का भी उल्लेख है। हिन्दू विग्रह की मूर्ति की जैन मंदिर में स्थापना-धार्मिक सहिष्णुता का अन्यतम उदाहरण है। यह सफेद संगमरमर में बनी मूर्ति मंदिर के प्रांगण में आज भी विद्यमान है। इसमें प्रधान मूर्ति के रूप में लक्ष्मीनारायण का अंकन है तथा निचले भाग में वराह व नृसिंह अवतार अंकित है। ऊपरी संभाग में दाएं कोने में खड्गधारी व अश्वारोही अचुप्ता देवी तथा बाएं कोने में आसनस्थ तीर्थंकर बने हैं। कुंथुनाथजी के मंदिर के बाह्य मंडोवर पर जो विभिन्न मुद्राओं में सुन्दर मदनिकाएं (कंदुक क्रीड़ा, सिंह युद्धरत आदि) उत्कीर्ण हैं—उनका कलाकार **सूत्रधार भोजा** है। शान्तिनाथ मंदिर के विभिन्न मंडपों के वितान एवं संवरणा विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आदिनाथ मंदिर का निर्माण भी शांतिनाथ मंदिर के साथ उसी वर्ष में हुआ।

जैसलमेर शहर में भी अनेक जैन मंदिर, देरासर, उपासरे व ग्रंथ भण्डार हैं परन्तु शहर से लगभग ६ किलोमीटर दूरस्थ एवं अमर सागर पर स्थित तीन जैन मंदिर—यद्यपि अधिक पुराने नहीं हैं परन्तु अपनी उत्कृष्ट कला के कारण वे निस्संदेह विशाल मरुभूमि में शिल्प की अनुपम निधियां हैं। इन तीनों मंदिरों में मूलनायक के रूप में आदीश्वर भगवान प्रतिष्ठित हैं और ये मन्दिर १९ वीं शताब्दी के परिष्कृत मंदिर-स्थापत्य कला के उल्लेखनीय उदाहरण हैं। एक मन्दिर पंचायत द्वारा वि. सं. १९०३ में महारावल रणजीतसिंह के समय बना। अन्य दो मंदिरों के निर्माण का श्रेय जैसलमेर के सुविख्यात बापना जाति के सेठों को है जिनकी पटुवों की हवेलियां अपने जाली व झरोखों के लिए प्रसिद्ध हैं। छोटा मंदिर बापना सवाईराम ने वि. सं. १८७० में तथा बड़ा मंदिर बापना हिम्मतराम ने वि. सं. १९२९ में निर्मित कराया। इन दोनों मंदिरों की प्रतिष्ठा खरतरगच्छ के आचार्य जिनमहेन्द्र सूरि ने की। छज्जों और गवाक्षों की कारीगरी की छटा अनुपम है तथा मंदिर में जन-जीवन की झांकी प्रस्तुत करने वाली मूर्तियां १९ वीं शताब्दी की राजस्थानी शिल्पकला की अन्यतम निधियां हैं जो जैसलमेर की कलात्मक समृद्धि की निदर्शक हैं। □

जिस प्रकार आधा भरा हुआ घड़ा झलकता है, भरा हुआ नहीं; कांसे की थाली रणकार शब्द करती है, स्वर्ण की नहीं; और गदहा रेंकता है, घोड़ा नहीं; इसी प्रकार दुष्ट स्वभावी दुर्जन थोड़ा भी गुण पाकर ऐंठने लगते हैं और अपनी स्वल्प बुद्धि के कारण सारी जनता को मूर्ख समझने लगते हैं।

—राजेन्द्र सूरि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org